NATIONAL TESTING AGENCY

सा विद्या या विमुक्तये

हिन्दी साहित्य

NET/JRF GROUP

कम---- पढ़े,
बेहतर--- पढ़े
अच्छे-से पढ़े।
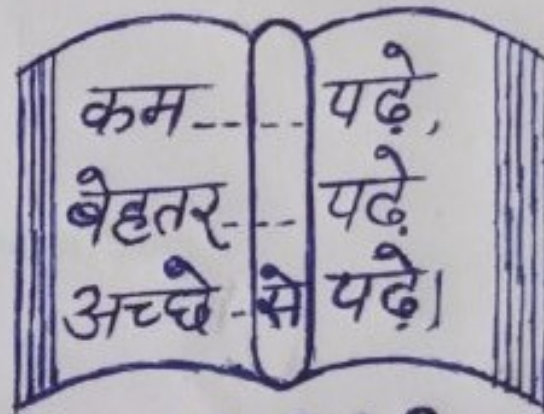
2019

सब एक के लिए, एक सब के लिए

3.3 आदिवासी विमर्श

आदिवासी शब्द के लिए बनवासी, जनजाति, आदिम जाति, आदिमवासी आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। संविधान द्वारा आदिवासियों को अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है, “आदिवासी शब्द उन समुदायों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिन्हें भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों के तौर पर निर्दिष्ट किया है। दरअसल यह एक प्रशासनिक शब्द है जिससे किसी विशेष क्षेत्रीयता का संकेत मिलता है। इसका उद्देश्य किसी जनसमुदाय की विशिष्ट आनुवांशिक स्थिति से ज्यादा उसकी सामाजिक - आर्थिक स्थिति का परिचय देना है।”[1] आदिवासियों की पहचान क्या है, वे कौन हैं, यह उनके इतिहास नाम से जुड़ सवाल है। रमणिका गुप्ता ने ‘बनवासी’ तथा ‘जनजाति’ शब्द पर आपत्ति जाहिर की है “आदिवासियों की कोई जाति नहीं होती, तो वे ‘जनजाति’ कैसे बना दिए गए ? उन्हें ‘कबीला’ कहा जा सकता है लेकिन जाति नहीं। हमारे देश की धर्म और संप्रदायवादी शक्तियां लम्बे अरसे से वनवासी के रूप में उनका नया नामकरण कर और घर वापसी का नारा देकर, उनकी पहचान

[1] रमणिका गुप्ता (सम्पा.), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ - 29

मिटाने के लिए ही षडयन्त्र नहीं रच रही बल्कि धर्म के नाम पर आदिवासी को आदिवासी से लड़ाकर उनकी संस्कृति को अपने में समायोजित करने की चाल भी चल रही है।.......... 'वनवासी' शब्द केवल उनके मूल एवं उदगम को ही चुनौती देता है, बल्कि उनके जंगली, पिछड़ा, असभ्य होने की ध्वनि भी देता है और उनके मूल निवासी होने के दावे को डिफ्यूज करता है।"[1]

3.3.1 अर्थ एवं परिभाषा

वी.एन. सिंह एवं जनमेजय सिंह ने आदिवासी जातियों को प्रागैतिहासिक तथा आदिम जातियों से संबंधित मानते हैं। जिनमें संथाल, भील आदि शामिल हैं। आदिवासी राष्ट्र को परिभाषित करते हुए यू.एन.ओ. के घोषणापत्र में लिखा गया है, "आदिवासी राष्ट्र का तात्पर्य उन लोगों के वंशजों से है जो किसी देश की वर्तमान भूमि के पूरे या कुछ भाग पर विश्व के अन्य भागों की किसी भिन्न संस्कृति अथवा नस्ल के लोगों द्वारा पराजित कर दिए जाने या उनके साथ किसी समझौते के तहत या अन्य किसी तरह से वर्चस्वहीन अथवा औपनिवेशिक स्थिति में ढकेल दिए जाने से पहले से ही, वहां रह रहे थे।"[2] शास्त्रों में आदिवासियों को बड़े - बड़े दांतों, सींगों, पूंछ वाले कहा गया है। आदिवासियों को सभ्यता - संस्कृति से बेदखल किया गया, लेकिन उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखा। जंगल में अपनी संस्कृति के साथ वे आत्मसम्मान के साथ जीते लेकिन उनकी सांस्कृतिक - सामाजिक संरचना पर खतरा मंडराने लगा, "महाभारत काल या उससे पहले भी आर्यों ने उन्हें सभ्यता से बहिष्कृत कर जंगलों में ढेल दिया था, लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद दखलंदाजी का ढंग बदल गया,............... दरअसल आदिवासियों के पास जंगल और जमीन न हो तो उस आदिवासी की पहचान ही खत्म हो जाती है। अंग्रेजों ने और आजादी के बाद सरकारों ने आदिवासियों को उनके जल, जंगल, जमीन से बेदखल ही किया है।.......... पहले वे जंगल के राजा थे अब वे लकड़ी - चोर में बदल गए।"[3]

---

[1] देवेन्द्र चौबे, दीपक कुमार (सम्पा.), हाशिये का वृतांत, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ - 353

[2] वही, पृष्ठ - 353

[3] वही, पृष्ठ - 355

3.3.2 आदिवासी आंदोलन: सामान्य परिचय

व्यवस्था द्वारा पूंजीवादी गठजोड़ से आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करके उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में कोयला, यूरेनियम, बाक्साइट, मैंगनिज, माइका, तांबा, लोहा पाए जाते हैं जिनका अंधाधुंध दोहन बहुराष्ट्रीय कम्पनियां कर रही हैं। सत्ता से वंचित आदिवासियों ने संघर्ष का रास्ता अपनाया। इसी संघर्ष से आदिवासी साहित्य ने खुराक ग्रहण की है। छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, केरल, अंडमान, पूर्वोत्तर आदि इलाकों में आदिवासियों ने अंग्रेजों, महाजनों, जमींदारों, देशी शासकों, के विरुद्ध संघर्ष किया।

1855 में आदिवासियों ने अंग्रेजों, महाजनों, जमींदारों के विरुद्ध सिद्धू - कान्हू ने विद्रोह किया। 20 हजार आदिवासियों के साथ सिद्धू - कान्हू ने राजभवन पर हमला कर उसे कब्जा लिया, सिद्धू को फांसी की सज्जा हुई। 10 हजार आदिवासियों के मारे जाने पर भी विद्रोह जारी रहा।

लगान तथा जमीन की बेदखली के खिलाफ संथाल परगना तथा छोटा नागपुर में बिरसा मुण्डा और मुण्डा सरदारों ने विद्रोह किया। बिरसा ने घूम - घूमकर आदिवासियों को क्रांति के लिए संगठित किया, 1900 में बिरसा शहीद हुआ। 1930 में सिंहभूम में हरिबाबा ने आन्दोलन किया, "मीर कासिम के खिलाफ आदिवासी वीरांगना 'सिनगी दई' ने औरतों की सेना लेकर युद्ध किया था। आंध्रप्रदेश में श्री सीताराम राजू के नेतृत्व में आदिवासी समाज ने अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार - बंद गुरिल्ला युद्ध चलाया।"[1] राजस्थान के आदिवासी भीलों तथा गाड़िया लुहारों ने मुगलों और अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी।

आदिवासी संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी उनके विद्रोह की विशेषता है। रोहतासगढ़ किले की लड़ाई में सिगनी दई तथा केइली दई लड़ीं, सिद्धू - कान्हू की बहनें झानी व फूलों लड़ीं।

[1] रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ - 7

बिरसा मुण्डा के 'उलगुलान' में नागी, थीगी, चंपी, सामी, बनकन तथा मुंडा की पत्नी आदि महिलाएं शामिल रहीं। शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष के जज्बे को आदिवासियों ने बचाए रखा।

खनिजों के दोहन के लिए आदिवासियों पर रोज हमले हो रहे हैं। वे किसी से बराबरी की मांग नहीं करते बल्कि अपने संसाधनों को बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इन संसाधनों में केवल उनकी जीविका ही नहीं है बल्कि उनकी संस्कृति, सभ्यता भी है। सरकारी तंत्र तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लूट के विरुद्ध वे संघर्षरत्त हैं।

3.3.3 आदिवासी साहित्य एवं आलोचना

मनुष्य की अभिव्यक्ति को साहित्यिक रूप देने में आदिवासी समाज को लम्बे समय तक इंतजार करना पड़ा। मुख्यधारा का साहित्य उन्हें उपदेश देता रहा तथा साहित्य की चारदीवारी में उन्हें घुसने नहीं दिया गया। जंगलों में भटकते, विस्थापित प्रकृति मित्रों को अभिजात साहित्य अनदेखा करता रहा। सुर, ताल, लय के धनी उनके मानवतावादी स्वर की पहचान नहीं हो पाई।

आदिवासी परम्परा, संस्कृति तथा इतिहास की गौरवगाथा उनके लोकगीतों, लोककथाओं, किवंदतियों तथा मिथकों में जिंदा रही। लोक के इस स्वर को पहचान कर आदिवासी साहित्यकारों ने इसे अपने साहित्य में प्रकट करना शुरु किया। आदिवासी साहित्य में आदिवासियों की भाषा, संस्कृति, संवेदना आदि समग्रता में अभिव्यक्त होकर विमर्श का रूप ग्रहण कर रहे हैं। जंगल तथा पर्यावरण के प्रति चिंता ने आदिवासी समाज को मुख्यधारा में स्थापित करने का काम किया है। बहुत देर में ही सही पर आदिवासी साहित्य की बदौलत आदिवासियों को इंसान के रूप में देखा जाने लगा है। आदिवासी साहित्य में उनका जीवन सजीव रूप में सामने आ रहा है। जीवन के अनेक पहलुओं को खोलता आदिवासी साहित्य उल्लास तथा संघर्ष का साहित्य है। ऊंच - नीच, भेदभाव तथा छल - कपट से रहित उनका साहित्य न्याय का पक्षधर है। रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य को अन्याय का विरोधी तथा न्याय का पक्षधर मानते

बिरसा मुण्डा के 'उलगुलान' में नागी, थीगी, चंपी, सामी, बनकन तथा मुंडा की पत्नी आदि महिलाएं शामिल रहीं। शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष के जज्बे को आदिवासियों ने बचाए रखा।

खनिजों के दोहन के लिए आदिवासियों पर रोज हमले हो रहे हैं। वे किसी से बराबरी की मांग नहीं करते बल्कि अपने संसाधनों को बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इन संसाधनों में केवल उनकी जीविका ही नहीं है बल्कि उनकी संस्कृति, सभ्यता भी है। सरकारी तंत्र तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लूट के विरुद्ध वे संघर्षरत्त हैं।

3.3.3 आदिवासी साहित्य एवं आलोचना

मनुष्य की अभिव्यक्ति को साहित्यिक रूप देने में आदिवासी समाज को लम्बे समय तक इंतजार करना पड़ा। मुख्यधारा का साहित्य उन्हें उपदेश देता रहा तथा साहित्य की चारदीवारी में उन्हें घुसने नहीं दिया गया। जंगलों में भटकते, विस्थापित प्रकृति मित्रों को अभिजात साहित्य अनदेखा करता रहा। सुर, ताल, लय के धनी उनके मानवतावादी स्वर की पहचान नहीं हो पाई।

आदिवासी परम्परा, संस्कृति तथा इतिहास की गौरवगाथा उनके लोकगीतों, लोककथाओं, किवंदतियों तथा मिथकों में जिंदा रही। लोक के इस स्वर को पहचान कर आदिवासी साहित्यकारों ने इसे अपने साहित्य में प्रकट करना शुरु किया। आदिवासी साहित्य में आदिवासियों की भाषा, संस्कृति, संवेदना आदि समग्रता में अभिव्यक्त होकर विमर्श का रूप ग्रहण कर रहे हैं। जंगल तथा पर्यावरण के प्रति चिंता ने आदिवासी समाज को मुख्यधारा में स्थापित करने का काम किया है। बहुत देर में ही सही पर आदिवासी साहित्य की बदौलत आदिवासियों को इंसान के रूप में देखा जाने लगा है। आदिवासी साहित्य में उनका जीवन सजीव रूप में सामने आ रहा है। जीवन के अनेक पहलुओं को खोलता आदिवासी साहित्य उल्लास तथा संघर्ष का साहित्य है। ऊंच - नीच, भेदभाव तथा छल - कपट से रहित उनका साहित्य न्याय का पक्षधर है। रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य को अन्याय का विरोधी तथा न्याय का पक्षधर मानते

हुए कहती हैं, "आदिवासी साहित्य का महत्त्व इसलिए भी है कि यह निरा कल्पना का साहित्य न होकर जीवन का साहित्य है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है।"[1]

आदिवासी साहित्य की शुरुआत पत्रिकाओं से हुई मानी जा सकती है। 'अरावली उद्घोष', 'युद्धरत आम आदमी' जैसी पत्रिकाएं आदिवासी जीवन को स्वर देती हुई उनके जीवन, संघर्ष तथा संस्कृति को केंद्र में रखकर चलती हैं। इनके अलावा आदिवासी जीवन पर विशेषांक निकालने वाली पत्रिकाएं 'दस्तक', 'समकालीन जनमत', 'दोआबा', आदि हैं।

आदिवासी साहित्य के प्रारम्भिक साहित्यकार के रूप में आदिवासी कविता बाबा नागार्जुन का नाम लिया जा सकता है। जिन्होंने आदिवासी जीवन की समस्याओं और चुनौतियों को समझते हुए उनकी विडम्बनाओं पर कविताएं लिखी।

साहित्यकारों में देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये', वृंदावनलाल वर्मा का 'कचनार', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारुं', नागार्जुन का 'वरुण के बेटे', योगेंद्रनाथ सिन्हा का 'हो', राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', वीरेन्द्र जैन का 'पार' प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष आदिवासी जीवन पर लिखे गए उपन्यास हैं।

आदिवासी विमर्श के उभरने के साथ ही आदिवासी जीवन पर तेजी से लेखन होने लगा। आदिवासियों की जीवनशैली, संस्कृति तथा संघर्ष को आधार बनाकर रचना करने वाले समकालीन आदिवासी रचनाकारों में निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर, अनुज लुगुन, भुजंग मेश्राम, शंकरलाल मीणा, हरीराम मीणा, डा. बाहरु सोरवणे,महादेव टोप्पो, रामदयाल मुंडा, सरिता सिंह बड़ाइक, सहदेव सोरी, संजीव, तेजिंदर, प्रकाश मिश्र, रणेन्द्र, मनमोहन पाठक, रोज केरकेट्टा आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

पी. शंकर (तेलुगु) की हिंदी में अनुदित पुस्तक 'यह जंगल हमारा है' तथा सतनाम (पंजाबी) की पुस्तक 'जंगलनामा' आदिवासियों के जीवन पर आधारित प्रमुख पुस्तकें हैं। हरिराम मीणा की पुस्तक 'धूणी तपे तीर' राजस्थान के भीलों के जीवन पर आधारित महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

---

[1] रमेश सम्भाजी कुरे (सम्पा.), आदिवासी साहित्यः विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ - 33

पुन्नी सिंह का उपन्यास 'सहराना' मध्यप्रदेश तथा राजस्थान के पिछड़े हुए आदिवासियों के जीवन पर आधारित रचना है। राजस्थान की ही आदिवासी जाति 'गाड़िया लुहार' की कला, संघर्ष तथा संस्कृति के रंग में रंगा मणि मधुकर का उपन्यास 'पिंजरे में पन्ना' है।

आधुनिकता से दूर आदिवासियों के जीवन पर आधारित राकेश वत्स का 'जंगल के आस - पास' उपन्यास है। इस उपन्यास में पूंजीपतियों, पुलिस तथा नेताओं से आतंकित इलाके दमकड़ी की कहानी है। आदिवासियों के जीवन में धर्मिक अंधविश्वास, आडम्बरों आदि पर केन्द्रित 'महर ठाकुरों का गांव' बटरोही का एक सशक्त उपन्यास है। आदिवासियों के जीवन की अभावग्रस्तता को व्यक्त करता 'वनतरी' सुरेशचंद्र श्रीवास्तव का चरित्र प्रधान उपन्यास है।

श्री प्रकाश मिश्र का उपन्यास 'जहां बांस फूलते हैं' लुशेइया आदिवासियों के जीवन यथार्थ को तथ्यपरकता से पेश करता है। भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' राजनीतिक स्वार्थों के शिकार मेव आदिवासियों के दर्द को बयां करता है। 'अल्मा कबूतरी' मैत्रेयी पुष्पा का बुंदेलखंड की कबूतरा नामक आदिवासी जाति का उपन्यास है।

आदिवासी जीवन पर हबीब कैफी का 'गमना' आदिवासियों के गरसिया समुदाय पर लिखित एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। पिछड़ेपन के शिकार गरसिया समुदाय के लोगों के सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों को उपन्यास उभारता है। इस उपन्यास में आदिवासी और गैरआदिवासी समुदाय का संपर्क और उसमें आदिवासियों के शोषण को स्पष्टता से व्यक्त किया गया है।

रणेन्द्र का आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' कमजोर आदिवासियों की आवाज बुलंद करता है। हमेशा से दबाए गए आदिवासी समाज की पीड़ा एवं त्रास को रणेन्द्र ने बखूबी समझा है तथा भूमण्डलीकरण के दौर में उन पर बढ़ते हमलों के बारे में चिंता व्यक्त की है। उपन्यास के केन्द्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ चल रहा आदिवासियों का संघर्ष है। भूमण्डलीकरण का यह देवता बहुत ताकतवर है और सभी संस्थाएं इसके साथ हैं। आदिवासी समाज इसके सामने कमजोर पड़ रहा है।

'खुले गगन के लाल सितारे' मधु कांकरिया का आदिवासियों - नक्सलवादियों के जीवन पर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास में अंतर कथाओं के माध्यम से धार्मिक रुढ़ियों को उजागर किया गया है। उपन्यास में खुले विचारों के साथ व्यवस्था से लड़ने वाले युवाओं को सितारों के रूप में चित्रित किया गया है। पीटर पॉल एका द्वारा रचित उपन्यास 'जंगल के गीत' में आदिवासियों के नायक बिरसा मुंडा की अगुवाई में हुए उलगुलान की कहानी है। बिरसा पूरे गांव को विद्रोह के लिए तैयार करता है तथा महिलाओं को भी बंदूक उठाने के लिए प्रेरित करता है। 'सपनों वाली वह दुबली लड़की' शंकर लाल मीणा का आदिवासी युवक - युवती के प्रेम पर आधारित उपन्यास है जिसमें एक पढ़े - लिखे युवक को एक आदिवासी लड़की जीवन के हर मोड़ पर प्रेरणा तथा दिशा देती है।

रामधन लाल मीणा की कहानी 'अप्रत्याशित' व्यवस्था के आगे निरीह तथा हारते आदिवासियों की कहानी है। दिनानाथ मनोहर की कहानियां 'स्थित्यन्तर' तथा 'जंगल शांत हुआ' नई नीतियों के कारण शोषित आदिवासियों की विवशता तथा नई - पुरानी संस्कृति में तालमेल न बैठा पाने लेकिन बदलने की मजबूरी को व्यक्त करती कहानियां हैं। वाल्टर भेंगरा की कहानी 'खखरा का जतरु' आदिवासियों के निश्चल प्रेम तथा जीवन - मूल्यों की कहानी है। जतरु "पढ़ने - लिखने के बाद भी अपनी जमीन और समाज को नहीं भूलता और अपनी बचपन की प्रेमिका अनपढ़ एतबा से शादी कर, अपने विकास के सब प्रलोभन छोड़कर गांव और समाज के विकास के लिए गांव लौट आता है।"[1]

पीटर पॉल एका की 'राजकुमारों के देश में' विस्थापित आदिवासियों के दर्द को व्यक्त करती कहानी है। कृष्णचंद टुड्डू की 'एक वित्ता जमीन' रोज केरकट्टा की 'भंवर' में आदिवासी लड़कियों के अधिकार प्राप्ति के लिए किए गए विद्रोह की कहानियां हैं। आदिवासी जीवन पर लिखने वाले अन्य कहानीकारों में विपिन बिहारी, परदेशीराम वर्मा, भावसिंह हिरमानी, कैलाशचंद आदि उभरते हुए कहानीकार हैं।

---

[1] रमणिका गुप्ता (सम्पा.), आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ - 14

हिंदी कविता ने आदिवासी साहित्य को पैनी धार दी है। कविता की बदौलत आदिवासियों को इन्सान की नजर से देखने की कोशिश हुई है। वाहरु सोनवणे अपनी कविता में कहते हैं, "हम स्टेज पर गए ही नहीं/ और हमें बुलाया भी नहीं/ उंगली के इशोरे से/ हमारी जगह हमें दिखाई गई।"[1] आदिवासी कसमसाहट इस कविता में व्यक्त हुई है। आदिवासी महिला 'सिनगी दई' को प्रेरणास्त्रोत मानकर ग्रेस कुजूर लिखती हैं, "और अगर अब भी तुम्हारे हाथों की/ अंगुलियां थरथराई तो जान लो/ मैं बनूंगी एक बार और/ सिनगी दई, बांधूगी फेटा/ और कसेगी फिर से/ बेतरा की गांठ।"[2] बिरसा, सिद्धू - कान्हू, मकी, गोविंद गिरी से प्रेरणा लेकर शोषण को पहचान कर उसका विरोध कर रहा है जिसकी अभिव्यक्ति अनुज लुगुन की कविता में हुई है, "इसी जंग के बीच स्वत्व के लिए/ लहरा ठी थी - सर..... स... स... र...।।।/ सिद्धू - कान्हू और तिलका की तनी धनुष से टूटा तीर/ इनकी मूर्तियों तले चौहारे पर उठती है।"[3] विनोद कुमार शुक्ल की कविता, "जो प्रकृति के सबसे निकट है/ जंगल उनका है/ आदिवासी जंगल में सबसे निकट है/ इसलिए जंगल उन्हीं का है/ अब उनके बेदखल होने का समय है।"[4]

साहित्य की प्रचूरता के बावजूद आदिवासी आलोचना मुख्य रूप से पत्रिकाओं में लेखों के रूप में लिखी जा रही है। इधर कुछ संपादित तथा मौलिक शोधपरक पुस्तकें आदिवासी साहित्य की आलोचना की कमी पूरी कर रही हैं।

रमेशचंद मीणा 'आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और दस्तक' पुस्तक में आदिवासियों पर मौलिक शोध के साथ उनकी समस्याओं तथा मुद्दों को उठाते हैं। दलित तथा आदिवासी विमर्श का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लेखक ने इनके मुद्दों को अलगाया है। आदिवासियों पर भूमण्डलीकरण की मार से उनकी बिगड़ती स्थिति तथा इससे उपजे संघर्ष को लेखक ने बखूबी समझा है। आदिवासियों के जीवन तथा उनके संघर्ष पर आधारित साहित्य की पड़ताल इस पुस्तक में की गई है, "बिरसामुंडा को चर्चित, प्रचारित और प्रसारित करने में महाश्वेता देवी के 'जंगल के

---

[1] रमणिका गुप्ता (सम्पा.), आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ - 5

[2] हरिराम मीणा (सम्पा.), समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - 22

[3] कुमार विरेन्द्र, आदिवासी विमर्श और हिंदी साहित्य, पेसिफिक पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृष्ठ - 208

[4] रमेशचंद मीणा, आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - 8

दावेदार' उपन्यास ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।"[1] आदिवासी चिंतक महाश्वेता देवी का जिक्र लेखक ने किया है

रमेश सम्भाजी कुरे के सम्पादन में 'आदिवासी साहित्यः विविध आयाम' पुस्तक में आदिवासी जीवन पर केन्द्रित रचनाओं के उद्भव, विकास एवं उनकी समकालीन स्थिति का जायजा लिया गया है। इस पुस्तक में आदिवासी उपन्यासों की रचना के संबंध में लेखक कहता है, "हिंदी के आदिवासी उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए आदिवासियों के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना।"[2] पुस्तक में उपन्यास के अलावा आदिवासी कहानी, कविता, नाटक तथा आदिवासी साहित्यकारों की समीक्षा भी है।

ब्रह्मदेव शर्मा की पुस्तक 'आदिवासी विकासः एक सैद्धांतिक परिचय' में पिछड़े हुए आदिवासी समाज की समस्याओं को उठाया गया है। लेखक ने असमान विकास पर आधारित अर्थव्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाएं है। पुस्तक में विकास के नाम पर हुए आधुनिकीकरण से तालमेल न बैठा पाने वाले आदिवासियों की छटपटाहट को रेखांकित किया गया है। उत्तर - पश्चिम क्षेत्र की बहुपत्नी प्रथा पर लेखक ने विस्तार से चर्चा की है। आदिवासियों की समस्याओं को पर्यावरण तथा उनकी संस्कृति से जोड़कर देखा है।

रमणिका गुप्ता की पुस्तक 'आदिवासी कौन', तथा उन्हीं द्वारा संपादित 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' आदिवासी जीवन पर केन्द्रित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। पहली पुस्तक में जहां आदिवासी जीवन की जटिलताएं तथा उनका जुझारु रूप चित्रित हुआ है वहीं दूसरी पुस्तक में आदिवासी जीवन की साहित्य में अभिव्यक्ति पर गौर किया है। 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' पुस्तक में लेखिका ने आदिवासी जीवन पर केन्द्रित साहित्य की विभिन्न विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि का संकलन तथा समीक्षा की है।

दीपक कुमार, देवेन्द्र चौबे द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हाशिये का वृतांत' हाशिए पर धकेले गए समुदायों की स्थिति पर केन्द्रित पुस्तक है। हाशिए के इन समुदायों में एक समुदाय

---

[1] रमेशचंद मीणा, आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - 27

[2] रमेश सम्भाजी कुरे (सम्पा.), आदिवासी साहित्यः विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ - 88

आदिवासियों का है जो अपने जल, जंगल तथा जमीन के लिए संघर्षरत्त है। आदिवासी समुदाय की दशा तथा दिशा लेखकों ने समझी है।

3.3.4 आदिवासी साहित्य एवं आलोचना के प्रमुख मुद्दे

दलित तथा स्त्री विमर्श की तरह पितृसत्ता तथा लैंगिक समानता या सामाजिक समानता आदिवासियों का मुद्दा नहीं है, ना ही वे अपनी पहचान को बचाए रखने के लिए लड़ रहे। उनका संघर्ष अपने प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए है। आज मीडिया तथा सरकारी तंत्र का तामझाम आदिवासी संस्कृति पर ही केन्द्रित होकर चर्चा कर रहा है। आदिवासियों की सांस्कृतिक पहचान पर ही पूरा जोर लगाया जा रहा है, लेकिन सोचने की बात है कि उनके जल, जंगल और जमीन को नष्ट करके क्या उनके जीवन तथा संस्कृति को बचाया जा सकता है।

लम्बे समय तक अंधेरे में रहने वाले आदिवासी समाज में सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा रचनाकारों के प्रवेश से चेतना जगी है। उनका परिचय नई - नई विचारधाराओं से होने लगा है। जिनके परिप्रेक्ष्य में वे अपने इतिहास तथा परिस्थितियों को समझने लगे हैं। आदिवासियों में अन्याय तथा भेदभाव के खिलाफ अपने हकों को पाने का विद्रोह जगा है, वे अस्तित्व की लड़ाई लड़ने लगे हैं। आदिवासी समाज अपने जल, जंगल और जमीन को बचाने की लड़ाई लड़ रहा है। जल, जंगल और जमीन उनके जीवन का आधार है, इन्हीं से उनका जीवन चलता है। जंगल के बचे रहने पर ही आदिवासियों का अस्तित्व बचा रह सकता है। आदिवासियों के पूर्वजों ने जंगल को सींचा है और जंगल ने उनको जीवन दिया है।

आज के दौर में विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके आदिवासियों के जीवन को तबाह किया जा रहा है। बड़े - बड़े बांध बनाकर उनके गांव के गांव उजाड़े जा रहे हैं। जंगलों, पहाड़ों को नष्ट करके उनका आजीविका के साधन छीने जा रहे हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में मुनाफे के आगे आदिवासियों के जीवन का सवाल गौण हो चुका है। उनकी स्थिति की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। इसी की चिंता में रमेशचंद मीणा कहते हैं, "बस्तर में कच्चे लोहे का दोहन

1954 में होने लगता है। पिछली आधी सदी गुजर जाने पर भी इन लोह दोहन क्षेत्रों में जाकर यह देखने का प्रयास नहीं किया गया कि वहां क्या स्थिति हुई है ?''[1]

व्यावसायिक हितों के लिए विकास के नाम पर आदिवासियों की जमीन छीनकर उन्हें बेदखल किया जा रहा है। रमणिका गुप्ता इस बारे में चिंतित हैं, ''आजादी के बाद देश के विकास का यह कार्यक्रम आदिवासी की कीमत पर हुआ है। विकास की कीमत वह अपने विस्थापन से अदा करता है। उसके खेत खदानों में बदल गए और जंगल लकड़ी की टालों में समा गए या कुर्सियों, मेजों और फर्नीचर में बदल गए। गाछ खूंटे और बल्ले बन गए और बन गई रेल की पटरियां।''[2]

पूंजीवादी भूमण्डलीकरण के इस दौर में आदिवासियों का विस्थापन उनकी जीवनशैली को पूर्णतः बदल रहा है। व्यवस्था द्वारा सुनहरे सपने दिखाकर आदिवासियों की जमीन उनसे छीनी जा रही है। विकास के पहाड़ के नीचे आदिवासी का अस्तित्व दब रहा है। उनकी जमीन, उनकी संस्कृति सब चीजों से उन्हें विस्थापित होना पड़ रहा है, ''आदिवासियों के लिए बड़ा मुद्दा विस्थापन का रहा है। देश के विकास की जब भी बात होती है तब आदिवासी अपने आप सामने आ जाते हैं। देश के विकास का रास्ता आदिवासी की जमीन से होकर ही गुजरता है। बांध, चतुरभुज कॉरिडोर और औद्योगिक परियोजनाओं को मूर्त रूप देना हो तो उजड़ना आदिवासी को ही पड़ता है, अपनी जमीन से विस्थापित आदिवासी ही होता है।''[3] यह तथाकथित विकास आदिवासी के लिए विनाश का पर्याय बन रहा है, ''एक अध्ययन के अनुसार पिछले दस सालों में उड़ीसा, झारखण्ड, आंध्रप्रदेश और छत्तीसगढ़ सरकार ने एक करोड़ एकड़ से अधिक जमीन अधिग्रहीत की जिससे सोलह लाख लोग विकास के नाम पर विस्थापित हुए।''[4] आज के दिन आदिवासी अपने जीवन को बचाने के लिए जद्दोजहद कर रहा है।

---

[1] रमेशचंद मीणा, आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - 54

[2] रमणिका गुप्ता (सम्पा.), आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ - 11

[3] रमेशचंद मीणा, आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - 13

[4] वही, पृष्ठ - 45

आदिवासी समाज में स्त्रियां पूरी तरह से स्वतंत्र हैं। उन पर किसी तरह की रोक - टोक या जोर - जबरदस्ती नहीं है। न वहां दहेज का लालच है ओर न ही पर्दे की घुटन। उन्हें अपना जीवनसाथी चुनने तथा पुनर्विवाह करने की पूरी आजादी है। लेकिन आदिवासी जंगलों और जमीन को लूटने वाले महाजन तथा ठेकेदारों से आदिवासी महिलाएं भी बच नहीं पाती। तथाकथित शिक्षित समाज शिक्षा, धर्म, धन आदि के बल पर आदिवासी समाज को छलता है। आदिवासी लड़कियों को तरह - तरह के प्रलोभनों में फंसाकर उनकी अस्मिता के साथ खेला जाता है। भोग की वस्तु समझकर परोसी गई प्रताड़ित आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा को निर्मला पुतुल ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है, "आदिवासी औरत को लेकर कथित सभ्य समाज पूर्वाग्रह से ग्रस्त रहा है। उनकी रचनाओं में आदिवासी महिला कभी भी यथार्थ रूप में चित्रित ही नहीं हो सकी है। जब निर्मला पुतुल अपनी कविता में आदिवासी महिला के चित्र खड़े करती है तब सभ्य समाज सिर्फ चौंकता है।"[1]

आदिवासियों की संस्कृति पर्यावरण केन्द्रित संस्कृति है। उनकी संस्कृति की विशिष्टता उसका प्रकृति केन्द्रित होना ही है, "उनका सारा जीवन, संस्कृति, विश्वास एवं रीति - रिवाज पर्यावरण से इस तरह जुड़े होते हैं कि उन्हें अलग से देखा समझा ही नहीं जा सकता। उनका धर्म पर्यावरण - केन्द्रित है, संस्कृति विशिष्ट है, विश्वास एवं आस्थाएं पर्यावरण के इर्द - गिर्द घूमती हैं।"[2]

रहन - सहन को लेकर आदिवासी मैदानी इलाकों की तुलना में पूर्णतः भिन्न हैं। कपड़े न पहनना या कम कपड़े पहनना आदिवासियों की संस्कृति और रहन - सहन में शामिल है। "वहां पर यदि किसी बालिका को अपने वक्षस्थल ढंकने के लिए वस्त्र पहनने के लिए कहा जाए तो वह शरमाती है और उसे अटपटा लगता है। उसके परिजन परिहास में कहने लगते हैं कि ये तो खालपटी (मैदानी इलाका) की हो गई।"[3]

---

[1] रमेशचंद मीणा, आदिवासी दस्तकः विचार, परम्परा और साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - 67

[2] डा. ब्रह्मदेव शर्मा, आदिवासी विकासः एक सैद्धांतिक विवेचन, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, बानगंगा, भूमिका से

[3] वही,पृष्ठ - 5

रीति - रिवाजों तथा सामाजिक मान्यताओं के संदर्भ में आदिवासी बहुत रूढ़ नहीं है। विवाह आदि के मामले में वे बहुत जनतांत्रिक हैं, "आदिवासी समाज में यदि कोई लड़का और लड़की परस्पर वचन के आधार पर पति - पत्नी के रूप में साथ रहना शुरु कर दें तो सामाजिक दृष्टि से उनका विवाह मान्य हो जाता है। यहां परस्पर वचन के लिए साक्ष्य आवश्यक नहीं है। औपचारिक विवाह की रस्में बाद को सुविधा के अनुसार कभी भी पूरी की जा सकती है। इस संबंध में कोई सामाजिक ग्रंथियां नहीं हैं।"[1] आदिवासी क्षेत्र में जब से खनिजों के दोहन का विरोध तथा जंगल को बचाने का विद्रोह शुरु हुआ है तब से उनकी संस्कृति की तरफ ध्यान जाने लगा है। कला तथा संस्कृति की आवाज को दबाकर उसे मनोरंजन तथा सजावट के साधन के रूप में पेश किया जा रहा है।

कहा जा सकता है कि 1980 के बाद उभरे स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्शों की जड़ में जाकर इनके सरोकारों को आलोचना ने गहराई से समझा है। पितृसत्ता तथा ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर चोट करते हुए आदिवासी संस्कृति के पक्ष में आलोचना ने एक हथियार का काम किया है। आलोचना ने जहां स्त्री एवं दलित के लिए समान अधिकारों और अलग भाषा की मांग की वहीं आदिवासियों के संघर्ष से प्रेरणा लेकर देशी - विदेशी पूंजीपतियों का विरोध किया है।

[1] डा. ब्रह्मदेव शर्मा, आदिवासी विकासः एक सैद्धांतिक विवेचन, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, बानगंगा, पृष्ठ - 13